✓* इरिक्सन का मनोसामाजिक विकास का सिद्धांत :-
(Psychosocial Development Theory of Erik Erikson)

:- इरिक इरिक्सन (1902 - 1982) एक मनोविश्लेषक थे, जिन्होंने फ्रायड के व्यक्तित्व सिद्धांत को विकासात्मक अवस्थाओं का अध्ययन कर तथा व्यक्ति के संपूर्ण जीवनकाल का अध्ययन कर उनके विचारों से अलग अपना विचार दिया है।

इरिक्सन एक जर्मन मनोवैज्ञानिक थे जिन्हे अमेरिकी नागरिकता प्राप्त थी। इनके द्वारा मनोसामाजिक विकास सिद्धांत का प्रतिपादन 1950 ई० में किया गया था क्योंकि इरिक्सन का मानना था कि बालक के सामाजिक विकास में जैविक कारकों की अपेक्षा सामाजिक सामाजिक कारकों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होती है। इरिक्सन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "चाइल्डहुड एण्ड सोसायटी" (Childhood and Society 1963) में इरिक्सन

बालक के मनोसामाजिक विकास (इरिक्सन के संदर्भ में)

इरिक्सन के मनोसामाजिक विकास सिद्धांत की अवस्थाएं :-

→ (1) शैशवावस्था (विश्वास बनाम अविश्वास) (जन्म - 18 माह)

→ (2) प्रारंभिक बाल्यावस्था (स्वायत्तता बनाम लज्जाशीलता) (18 माह से 3 वर्ष)

→ (3) खेल अवस्था (पहल करना बनाम दोषिता) (3 - 6 वर्ष)

→ (4) स्कूल अवस्था (परिश्रम बनाम हीनता) (6 - 12 वर्ष)

→ (5) किशोरावस्था (अहं पहचान बनाम भूमिका द्वंद) (12 - 18 वर्ष)

→ (6) ~~किशोरावस्था~~ तरुणावस्था (घनिष्ठता बनाम अलगाव) (18 - 35 वर्ष)

→ (7) मध्यवयस्कावस्था (उत्पादकता बनाम स्थिरता) (35 - 65 वर्ष)

→ (8) परिपक्वता (अहं सत्यनिष्ठता बनाम नैराश्य या निराशा) (65 - मृत्युपर्यंत)

(1) विश्वास बनाम अविश्वास :- जब बच्चों को अपने माता-पिता या अन्य देखभाल करने वाले लोगों से सतत उचित स्नेह, प्यार, दुलार आदि मिलता है तब उनमें विश्वास (Trust) की भावना उत्पन्न होती है, किन्तु बच्चों को अपने माता-पिता तथा अन्य द्वारा रोते - बिलखते, भूखे - प्यासे छोड़ दिया जाता है तब उनमें दूसरे व्यक्तियों के प्रति अविश्वास की भावना उत्पन्न होती है अर्थात विश्वास तथा अविश्वास दोनों की स्थिति रहने पर बालक में एक द्वन्द की स्थिति

उत्पन्न होती है और इस संकट का जब वह समाधान कर लेता है तो एक विशेष मनोसामाजिक शक्ति उत्पन्न होती है जिसे 'आशा' (उम्मीद) कहा जाता है, जिस कारण बालक बाल्यावस्था में अपने सांस्कृतिक मूल्यों तथा धर्म में आस्था दिखाता है।

(2) स्वायत्तता बनाम लज्जाशीलता (1 वर्ष या 18 माह से 3 वर्ष तक)

यह 1 वर्ष या 18 माह से 3 साल की अवधि होती है इसमें शिशु अपने माता-पिता के प्रति विश्वास भाव उत्पन्न होने पर वे अपने व्यवहारों में स्वतंत्रता को महत्व देने लगते हैं जैसे- अपने से खाना, कपड़ा पहनना, शौच करना इत्यादि। परन्तु बड़े या माता-पिता ऐसा करने पर इन्हें रोकते हैं जिससे उनके अंदर लज्जा या शर्म का भाव उत्पन्न होता है जब बच्चा स्वायत्तता बनाम लज्जा का सफलतापूर्वक समाधान कर लेता है तो उसमें एक मनोसामाजिक शक्ति का जन्म होता है जिसे इच्छा-शक्ति कहा जाता है जिसके फलस्वरूप बच्चे शक तथा लज्जा की परिस्थिति में भी खुलकर अपने स्वतंत्र पसंद तथा आत्म-नियंत्रण का प्रयोग करके सामाजिक व्यवहार करने लगते हैं।

(3) पहल करना बनाम दोषिता (3 से 5, 6 साल)

यह 3 साल से 5 साल या 6 साल की अवधि होती है। यह बालक की आरंभिक बाल्यावस्था होती है जब बच्चों में स्वायत्तता का भाव विकसित हो जाता है, तो वैसे बच्चे अब अपने आस-पास के वातावरण में खोज करना प्रारंभ कर देते हैं तथा नयी-नयी

खोजो को करने की प्रेरणा देता है जिसे पहला इसे ही पहल कहा जाता है। माता-पिता को चाहिए की इनके पहल या प्रयासों की सराहना करे, यदि माता-पिता इनके खोजों या कार्यों की आलोचना करते हैं अथवा उन्हें डाटते हैं तब उनमें दोष भाव उत्पन्न होता है अर्थात दोषिता।

अतः इरिक्सन के 'मनोसामाजिक सिद्धांत' के अनुसार बालक जब पहल-बनाम दोषभाव के संघर्ष का समाधान कर लेता है तब उनमें एक विशेष मनोसामाजिक शक्ति उत्पन्न होता है जिसे उद्देश्य कहा जाता है। इसके परिणामस्वरूप बालकों में लक्ष्य-उन्मुखता जैसे व्यवहार करने की प्रेरणा उत्पन्न होती है।

(4) परिश्रम बनाम हीनता (6 से 12 वर्ष) :- यह मनोसामाजिक अवस्था की चौथी अवस्था है जिसकी अवधि 6 से 12 वर्ष तक की होती है इसे उत्पादकता भी कहा जाता है, जब बच्चों में 'पहल' से नई-नई अनुभूतियाँ प्राप्त हो जाती है तो वे अपनी योग्यता और क्षमता के अनुरूप नये ज्ञान अर्जन करने तथा बौद्धिक कौशलों को सीखने में लगाना प्रारंभ कर देते हैं। इनकी अपनी प्राप्त सफलता एवं पहचान को परिश्रम का नाम दिया गया है, जैसे - बच्चे स्कूल में अपनी अधिक ऊर्जा लगाते हैं, इसलिए शिक्षक तथा अन्य साथियों का प्रभाव महत्वपूर्ण रूप से पड़ता है।

यदि अगर छात्रों के सामने चुनौतियाँ काफी कठीन है और असफलता उसके हाथ लगती है तो बच्चों में हीनता का भाव उत्पन्न होता है, इसी प्रकार यदि छात्र को छोटे कार्य में सफलता हासिल हुई तो उसमें परिश्रम का भाव विकसित नहीं होता है।
इस प्रकार जो छात्र परिश्रम बनाम हीनता के संकट का सफलतापूर्वक समाधान कर लेते है, तब उनमें एक विशेष मनोसामाजिक गुण विकसित होता है जिसे ~~समर्थता~~ सामर्थ्यता की संज्ञा दी जाती है जिसके परिणामस्वरूप छात्रों में यह विश्वास उत्पन्न होता है कि वे किसी भी वातावरण के साथ ठीक ढंग से निपटने में सक्षम है अर्थात समायोजित होने के गुणों का विकास होता है।

(5) पहचान बनाम भ्रांति (असमंजस, दुविधा) :-

यह इरिक्सन के सिद्धांत की 5-वीं अवस्था है, जिसकी अवधि 12 वर्ष से 18 वर्ष की होती है। यह किशोरावस्था की अवस्था होती है। इस अवस्था में किशोरो में यह जानने की प्राथमिकता रहती है कि उनकी पहचान क्या है? वे कौन है? उनको क्या करना है? इरिक्सन ने इसे पहचान की संज्ञा दी है, किशोरो को अपना पहचान बनाने रखने के लिए भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में खोज करना होता है। जिससे वे विभिन्न भूमिकाओं का निर्वहन करते है और भविष्य का सही रास्ता तलाशते है परन्तु किसी कारणवश किशोर अपनी भूमिकाओं का या सही रास्तों की खोज नहीं कर पाते है तब वे असमंजस की स्थिति में हो जाते है।
इस तरह किशोर पहचान बनाम भ्रांति

या असमंजस का सही समाधान ढूंढ लेते हैं तो उनमें एक विशेष मनोसामाजिक गुण उत्पन्न होता है जिसे कर्तव्यपरायणता कहा जाता है। इसके परिणामस्वरूप किशोर व्यक्ति में समाज के नियमों तथा आदर्शों के अनुरूप व्यवहार करने की उन्मुखता बढ़ जाती है।

(6) घनिष्ठता बनाम अलगाव :- यह इरिक्सन के सिद्धांत की छठी अवस्था है जिसको अवधि 18 से 35 वर्ष की होती है। इस अवस्था में व्यक्ति दूसरों के साथ एक घनात्मक संबंध बनाता है जब व्यक्ति में दूसरे के साथ घनिष्ठता का भाव विकसित होती है तो वह अपने - आपको दूसरे के लिए समर्पित कर देता है, जो लोग दूसरों के साथ इस ढंग की घनिष्ठता नहीं विकसित कर पाते हैं, वे सामाजिक रूप से अलग हो जाते हैं तब उनमें अलगाव की स्थिति उत्पन्न होती है।

इस तरह से इस अवस्था का प्रमुख समस्या घनिष्ठता - बनाम - अलगाव का का संघर्ष उत्पन्न होता है और जो लोग इस समस्या का सही ढंग से समाधान कर लेते हैं तब उनमें एक विशेष मनोसामाजिक गुण विकसित होता है जिसे 'प्यार' कहा जाता है। और जो व्यक्ति घनिष्ठता बनाम अलगाव के संघर्ष का समाधान ठीक से नहीं कर पाते हैं, वे सामाजिक रूप से अलग हो जाते हैं तथा दूसरों को प्यार एवं स्नेह देने तथा लेने में असमर्थ हो जाते हैं।

(7) जननात्मकता बनाम स्थिरता :- इरिक्सन के सिद्धांत की यह 7वीं अवस्था है जिसकी अवधि 40 से 50 वर्षों की होती है; इसे मध्यावस्था भी कहा जाता है। इस अवस्था के व्यक्ति में जननात्मकता का भाव उत्पन्न होता है, जननात्मकता से तात्पर्य है कि व्यक्ति द्वारा अगली पीढ़ी के लोगों के कल्याण तथा उस समाज के लिए जिसमें वे लोग रहेंगे, को समृद्ध बनाने की चिंता से होता है। जैसे - शिक्षक अपने छात्रों एवं उसके उचित देखभाल तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा के प्रति चिंतित रहता है जब व्यक्ति में ऐसे भावों का विकास नहीं होता तब उसमें स्थिरता का गुण विकसित होता है ~~जिसे~~ जैसे कि वह अपने अगली पीढ़ी के लिए कुछ भी नहीं कर सका।

इस तरह व्यक्ति जननात्मक बनाम स्थिरता के समस्याओं का समाधान ठीक से कर लेता है तथा उसमें एक विशेष मनोसामाजिक शक्ति उत्पन्न होती है। जिसे इरिक्सन देखभाल की संज्ञा देता है इस स्थिति में व्यक्ति दूसरों के कल्याण की चिंता अधिक करता है।

(8) संपूर्णता बनाम निराशा :- इरिक्सन के मनोसामाजिक विकास की यह अंतिम अवस्था होती है। जिसकी अवधि 65 वर्ष से मृत्युपर्यंत तक होता है। इसे वृद्धावस्था भी कहा जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति का ध्यान भविष्य से हटकर अपने बीते दिनों के प्राप्त सफलताओं तथा असफलताओं की ओर अधिक होता है यदि व्यक्ति अपने पिछले समय का मूल्यांकन धनात्मक सोच से करता है अर्थात् सफलताओं का मूल्यांकन अधिक तथा असफलताओं का मूल्यांकन कम अनुभव करता है तो उनमें संपूर्णता का भाव विकसित होता है।

इस तरह व्यक्ति अपनी पिछली उपलब्धियों को नकारात्मक रूप में देखता है तो उसमें निराशा की भाव उत्पन्न होती है। अतः जब व्यक्ति संपूर्णता बनाम निराशा के समस्याओं का समाधान ठीक से कर लेता है तो उसमें परिपक्वता जैसी मनोसामाजिक शक्ति विकसित होती है तथा उसमें बुद्धिमता का व्यावहारिक ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

इसप्रकार इरिक्सन ने अपने मनोसामाजिक विकास सिद्धांत को आठ अवस्थाओं में बाँटकर विकसित किया है जिससे बालक के विभिन्न अवस्थाओं के साथ समायोजित करने का प्रयास किया है।

* इरिक्सन के मनोसामाजिक सिद्धांत की शैक्षिक उपयोगिता :-

(1) इसके अनुसार छोटे बच्चों में पहल को बढ़ावा दिया जाता है तथा आरंभिक प्राथमिक स्कूली बच्चों एवं उनकी शिक्षा कार्यक्रम में उन्हें अपने वातावरण में खोज का पर्याप्त अवसर देना चाहिए। जैसे - उनके सामने कुछ ऐसी चिजों को रखना चाहिए जिससे उनकी कल्पनाशक्ति बढ़े।

(2) प्राथमिक स्तर तथा उच्च प्राथमिक स्तर के बच्चों में परिश्रम का भाव उत्पन्न करना।

(3) शिक्षकों को किशोरों को अपनी पहचान बनाने के लिए उद्देश्यों की ओर ले जाना चाहिए। जैसे खेलकूद, नाटक, संगीत इत्यादि कार्यक्रम।

(4) इसके अनुसार उनमें जीवन-यापन के तरीके विकसित करना चाहिए। जिससे वे अपना विशेष पहचान तथा अपने अंदर घनिष्ठता का भाव विकसित कर सके।

(5) इसके अनुसार शिक्षक अपनी भूमिका का निर्वहन करते हुए छात्रों में विश्वास, पहल और परिश्रम जैसे गुणों को विकसित करें।